संस्कृत साहित्य सौरभ

मालविकाग्निमित्र

संस्कृत-साहित्य-सौरभ
१०

कालिदास-कृत

मालविकाग्निमित्र

श्री सूर्यकुमार जोशी
द्वारा
कथा-सार

विष्णु प्रभाकर
द्वारा
सम्पादित

१९५६
सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

दूसरी बार : १९५६
मूल्य
छः आना

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस,
दिल्ली

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो जिसके सम्बन्ध में मूल्यवान सामग्री का अनन्त भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें, परन्तु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर संस्कृत के महाकवियों, नाटककारों आदि की प्रमुख रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हम हिन्दी में प्रस्तुत कर रहे हैं।

पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी के प्रमुख लेखक विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

इस माला की कई पुस्तकें निकल चुकी हैं और आगे निकल रही हैं। आशा है हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान रचनाओं की कुछ-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रंथ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

दूसरा संस्करण

इस माला की पुस्तकें बहुत लोकप्रिय हो रही हैं और हमें हर्ष है कि कुछ पुस्तकों का चन्द महीनों में दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। आशा है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य के प्रेमी पाठक इन पुस्तकों को और भी चाव से अपनावेंगे।

—मंत्री

भूमिका

'मालविकाग्निमित्र' ऐतिहासिक नाटक है और इसके रचयिता 'शकुंतला' की सृष्टि करनेवाले कालिदास ही हैं। यह उनकी पहली रचना जान पड़ती है। इस नाटक को प्रस्तुत करते समय उनके मन में इसकी सफलता के बारे में शंका थी, लेकिन साथ ही यह विश्वास भी था कि प्राचीन कवियों के नाटकों में जो बातें नहीं पाई जातीं, वे इसमें मिल सकती हैं।

इस नाटक में शुंग-वंशी राजा अग्निमित्र और विदर्भ देश की राजकुमारी मालविका की प्रेम-कहानी है। यह उस काल के राज-समाज का जीता-जागता चित्र पाठकों के सामने उपस्थित कर देता है। राजा की कामुकता, रानियों की डाह, राजमहल के षड्यंत्र, सभी उसमें मूर्त्त रूप से उतरे हैं। इसके अतिरिक्त बड़ी रानी की धीरता, राजा की न्याय-बुद्धि, सेनापति की स्वामिभक्ति, इन सबका भी सुन्दर वर्णन हुआ है। चरित्र-चित्रण बड़ा स्वाभाविक है और इसमें माधुर्य, ओज तथा प्रसाद तीनों गुण विद्यमान हैं। इस नाटक से तत्कालीन समाज के कला-प्रेम का भी पता लगता है। नृत्य और नाट्य-कला का तो बड़ा ही हृदयग्राही रूप देखने को मिलता है।

इस नाटक की काफी आलोचना हुई है, परन्तु कवि ने जिस समाज का चित्र खींचा है उसी दृष्टि से इसे परखना चाहिए। इसमें सत-रज-तम तीनों गुणों के अनुरूप अनेक प्रकार के रसों का परिपाक जिस कुशलता से कवि ने किया है, वह कालिदास ही कर सकते थे। वैसे यह शृंगार-रस प्रधान है।

कालिदास के समय और जन्मस्थान के बारे में बहुत मतभेद है, लेकिन यह ग्रंथ उन्हींका रचा माना जाता है। संस्कृत में ऐतिहासिक नाटक बहुत कम हैं। इस कारण इसका बड़ा महत्त्व है।

—सम्पादक

मालविकाग्निमित्र

परिचय

बहुत पुरानी बात है। शुंग-वंश में पुष्यमित्र नाम के एक महाराज थे। वह सेनापति पुष्यमित्र के नाम से प्रसिद्ध थे। उनके पुत्र का नाम था अग्निमित्र। पुष्यमित्र ने उन्हें विदिशा का शासक बना दिया था। इनकी दो रानियाँ थीं–धारिणी और इरावती। धारिणी पटरानी थी, और उनके वसुमित्र नाम का एक पुत्र तथा वसुलक्ष्मी नाम की एक कन्या थी। उनके दूर के रिश्ते के एक भाई भी थे। उनका नाम वीरसेन था और वह महाराज की ओर से नर्मदा के किनारे अन्तपालगढ़ की देख-भाल करते थे। उन्होंने अपनी बहन के पास एक कन्या को नृत्य-गान सीखने के लिए भेजा था। उस कन्या का नाम मालविका था और वह बहुत ही सुन्दर थी।

: १ :

एक बार महारानी धारिणी चित्रशाला में एक कुशल चित्रकार के बनाये हुए चित्र देख रही थीं कि महाराज अग्निमित्र भी वहां आ गए। उन्होंने एक चित्र में दासियों के बीच खड़ी हुई एक अनजान कन्या को

देखा। उसे देखकर उन्होंने पूछा, "यह सुन्दर लड़की कौन है ?"

महाराज के बार-बार पूछने पर भी रानी ने जान-बूझकर कोई उत्तर न दिया। लेकिन इसी बीच कुमारी वसुलक्ष्मी ने अपने बालपन में उस अनजान कन्या का नाम बता दिया। वही सुन्दरी मालविका थी।

इसपर महारानी ने मालविका पर कड़ा पहरा लगा दिया, जिससे वह महाराज के सामने न आ सके। उन दिनों वह महारानी की आज्ञा से नाट्यकला सीख रही थी। उस कला में वह स्वभाव से ही निपुण थी। उसके अभिनय को देखकर गुरु गणदास को ऐसा लगता था कि मानो मालविका उनकी शिष्या नहीं है, गुरु है। वे उससे बहुत प्रसन्न थे। उन्हें इस बात में विश्वास नहीं था कि मालविका दासी है और उसे वीरसेन ने नाच-गान सीखने के लिए भेजा है। रूप-रंग और शील-स्व-भाव से वह उन्हें किसी बड़े कुल की जान पड़ती थी, क्योंकि सिखानेवाले की कला अच्छे शिष्य के ही पास पहुँचकर उसी प्रकार खिल उठती है, जिस प्रकार बादल का जल सीपी में जाकर मोती बन जाता है। मालविका बड़े कुल की न होती तो कैसे नाच-गान में इतनी निपुण होती !

: २ :

विदर्भ के राजा यज्ञसेन और माधवसेन दोनों चचेरे भाई थे और राजगद्दी के लिए आपस में लड़ते रहते थे। माधवसेन ने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए अग्निमित्र की ओर मित्रता का हाथ बढ़ाया। इसी सम्बन्ध में अग्निमित्र से अपनी बहन का विवाह करने के लिए वह विदिशा जा रहे थे कि मार्ग में यज्ञसेन की सेना ने उनपर आक्रमण कर उन्हें बन्दी बना लिया।

यह समाचार जब अग्निमित्र के पास पहुँचा तो उन्होंने विदर्भराज यज्ञसेन को एक पत्र लिखा। उसमें उन्होंने अनुरोध किया कि वह माधवसेन और उनकी पत्नी तथा बहन को छोड़ दें।

इसके उत्तर में यज्ञसेन ने लिख भेजा, "आप बड़े हैं और यह भी जानते हैं कि समान वंश के राजाओं का बर्ताव कैसा होता है। आप चाहें तो हम लोगों का बीच-बचाव कर सकते हैं। माधवसेन और उसके साथियों की धरपकड़ में उसकी बहन कहीं खो गई है। उसे ढूंढ़ने का मैं पूरा यत्न करूँगा। लेकिन यदि आप चाहते हैं कि मैं माधवसेन को छोड़ दूँ तो आप भी मेरे साले मौर्य सचिव को, जो आपके कारागार में बन्द है, छोड़ दें।"

यह पढ़कर अग्निमित्र को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने अपने मन्त्री से कहा, "वीरसेन को आज्ञा दो

कि वह विदर्भ राज को जड़ से उखाड़ फेंके। वह मुझसे बदले का व्यवहार करना चाहता है। वह स्वभाव से ही मेरा शत्रु है। ऐसे खोटे शत्रु का नाश करने का मैं पहले ही संकल्प कर चुका हूँ।"

मंत्री भी यही चाहता था। इसलिए उचित प्रबन्ध करने के लिए वह वहाँ से चला गया। उसके जाने के बाद गौतम ने वहां प्रवेश किया। वह महाराज का मित्र विदूषक था। जिस मालविका को उन्होंने चित्र में देखा था, उसे वह आँखों से देखना चाहते थे। इसका उपाय ढूंढ़ने के लिए उन्होंने गौतम को ही तैनात किया था। इस बारे में उसने क्या किया, यह वह महाराज को बता ही रहा था कि नाट्यकला के आचार्य गणदास और हरदत्त आपस में लड़ते हुए वहाँ आ पहुँचे। वे इस बात का निर्णय करवाना चाहते थे कि उन दोनों में कौन श्रेष्ठ है। हरदत्त गणदास को अपने पैरों की धूल के बराबर भी नहीं समझते थे और गणदास अपने तथा हरदत्त में उतना ही अन्तर मानते थे, जितना समुद्र और गड्ढे में होता है। उन्होंने महाराज से परीक्षा लेने को कहा, लेकिन महाराज ने स्वयं इस झगड़े का निर्णय करना उचित नहीं समझा। उन्हें डर था कि रानी धारिणी यही समझेगी कि उन्होंने पक्षपात किया है। इसलिए उन्होंने कहा कि इस बात का निर्णय महारानी और

उनकी सखी संन्यासिनी कौशिकी के सामने होना चाहिए। इस बात पर किसीने भी आपत्ति नहीं की। इसलिए महाराज ने उन दोनों को बुला भेजा।

राजा की आज्ञा पाकर साधुनी के वेशवाली कौशिकी के साथ मंगल-अलंकारों से सजी हुई महारानी धारिणी राजसभा में पधारीं। कौशिकी विदुषी थी और पक्षपात से दूर रहनेवाली थी। उनमें गुण-दोष का विचार करने की बुद्धि भी थी। इसलिए गणदास और हरदत्त दोनों ने उन्हें अपना निर्णायक स्वीकार कर लिया।

अब राजा ने शास्त्रार्थ शुरू करने का आदेश दिया, किन्तु कौशिकी ने कहा, "नाट्यशास्त्र की जाँच तो करके दिखाने से होती है। कोरी बातचीत से क्या लाभ होगा?"

उन्होंने यह भी कहा कि कई व्यक्ति स्वयं गुणी होते हैं और कई में केवल दूसरों को सिखाने का ही गुण होता है, किन्तु जिस व्यक्ति में दोनों गुण हों, वही सच्चा और सबसे अच्छा गुणी है।

और सब लोगों ने तो इस बात को पसन्द किया, लेकिन रानी को यह सब पसन्द नहीं आया। वह नहीं चाहती थी कि गणदास की शिष्या राजा के सामने आये। इसलिए उन्होंने इस परीक्षा को टालने की पूरी कोशिश की, लेकिन आचार्य गणदास अपनी शिष्या की चातुरी दिखाने को बहुत उत्सुक थे। सो उनकी एक न चली

और अन्त में उन्हें अपनी अनुमति देनी ही पड़ी।

इसके बाद दोनों आचार्य तैयारी करने के लिए नाटक-घर में चले गये। यह निश्चय हुआ कि मृदंग की आवाज सुनने पर वे सब लोग भी वहाँ पहुँच जायंगे।

× × ×

मृदंग बज उठा और तब विदूषक के साथ राजा, रानी, पण्डिता कौशिकी तथा राज-परिवार के दूसरे लोगों ने संगीतशाला में प्रवेश किया। आचार्य गणदास हरदत्त से आयु में बड़े थे। इसलिए पहले उन्हींको अपनी कला दिखाने का अवसर दिया गया।

कुछ क्षण बाद गुरु के साथ मालविका ने मंच पर प्रवेश किया। राजा उसके रूप को देखते रह गए। वह चित्र से कहीं अधिक सुन्दर लग रही थी। उसका मुख शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान चमक रहा था, उसकी आँखें बड़ी-बड़ी थीं, उसके शरीर को देखकर ऐसा लगता था जैसे विधाता ने उसे नृत्य और नाट्य के लिए ही बनाया हो। उसने चार पदोंवाला एक गीत गाया और उसके भाव के अनुसार अभिनय भी किया। उसे देखकर राजा और भी मुग्ध हो उठे। जब वह जाने लगी तो सहसा विदूषक गौतम ने उन्हें रुकने के लिए कहा। गुरु की आज्ञा पाकर वह रुक गई। तब गौतम ने कहा,

"पहले देवी कौशिकी अपना मत प्रकट करेंगी। मैं पीछे बतलाऊँगा कि भूल कहां हुई है ।"

देवी कौशिकी ने उस अभिनय को बिल्कुल निर्दोष बताया और कहा, "वह इतना आकर्षक था कि मन किसी दूसरी ओर जाने ही नहीं पाता था ।"

महाराज ने भी उस अभिनय की प्रशंसा की । इस बात से गणदास बहुत प्रसन्न हुए । रानी ने भी उन्हें बधाई दी। गौतम को क्या कहना था। उसने तो मालविका को रोकने के लिए चाल चली थी । इसलिए गणदास मालविका को लेकर चले गए और तब हरदत्त ने अपना सिखाया हुआ अभिनय दिखाने की आज्ञा मांगी ।

राजा के मन में जो भी कुछ रहा हो, ऊपर से उन्होंने यही कहा, "हां-हां, हम लोग तो देखने को उतावले बैठे हैं ।"

लेकिन ठीक इसी समय वैतालिक ने दोपहर हो जाने की सूचना दी। इसपर गौतम बोला, "अरे-रे, अब तो भोजन का समय हो गया । वैद्य लोग कहते हैं कि समय पर भोजन न करने से बड़ी हानि होती है ।"

बेचारा हरदत्त अब क्या करता । राजा ने उससे कहा, "आपका प्रयोग हम कल देखेंगे । अब आप आराम करें ।"

इसके बाद सभा समाप्त हो गई ।

: ३ :

उसके कुछ दिन बाद भगवती कौशिकी की दासी एक नीबू लेने के लिए महाराज की बाटिका में गई तो मालिन ने उससे पूछा, "क्यों सखि, उन दोनों आचार्यों में जो झगड़ा चल रहा था, उसमें कौन जीता ?"

दासी ने उत्तर दिया, "यों तो दोनों ही पण्डित चतुर हैं, पर गणदास ने मालविका को जैसा अच्छा सिखाया है, उसे देख लेने पर यश गणदास को ही मिला है।"

मालिन ने फिर पूछा, "इधर मालविका के बारे में कुछ ऐसी-वैसी बातें सुनी जा रही हैं।"

दासी ने कहा, "सो तो ठीक है। महाराज उसे चाहते हैं, पर महारानी के डर के कारण कुछ कह नहीं सकते। इधर इन दिनों मालविका भी मुरझा रही है। और तो मैं कुछ नहीं जानती। अच्छा, चलूँ।"

मालिन ने कहा, "चलो, मैं भी चलती हूँ। मुझे भी महारानी से कहना है कि सुनहरा अशोक अभी तक फूल ही नहीं रहा। इसका कोई उपाय होना चाहिए।"

दासी ने ठीक कहा था। महाराज ऊपर से भले ही कुछ न कहते हों, पर भीतर से वह बहुत बेचैन थे। किसी काम में उनका मन नहीं लगता था। इसी समय एक दिन गौतम ने उन्हें याद दिलाया कि छोटी रानी इरावती ने

नये खिले हुए लाल कुरबक के फूलों को उनके पास भेजा था और वसन्त उत्सव के बहाने उनके साथ झूला झूलने की इच्छा प्रकट की थी। इसलिए अब प्रमदवन चलना चाहिए। महाराज रानी की बात सुन चुके थे और फिर रानी के प्रेम का इस प्रकार एकाएक अनादर करना भी ठीक नहीं था, इसलिए वे दोनों उधर ही चल पड़े।

× × ×

उन दिनों सचमुच वसन्त आ चुका था। पेड़ों पर कोयलें कूक रही थीं, आम के पेड़ों में बौर निकल आया था। दक्षिणी वायु उसकी सुगन्ध चारों ओर फैला रही थी। जिधर देखो उधर फूल खिले हुए दिखाई देते थे। कहीं लाल अशोक फूले थे तो कहीं काले, धौले और लाल कुरबक। कहीं भौरों से लिपटे तिलक की बहार थी। यह वह समय था जब अशोक-वृक्षों की इच्छा पूरी करने के लिए कुमारी और सौभाग्यवती नारियाँ सज-धजकर जातीं और जिन वृक्षों पर फूल न खिलते थे, उनपर अपने पैरों के प्रहार से फूल खिलाकर उनका मनोरथ पूरा करतीं।

प्रमदवन में एक सुनहरी अशोक था, जिसका मनोरथ पूरा करने के लिए महारानी धारिणी प्रतिदिन जाया करती थीं। किन्तु एक दिन विदूषक गौतम की कोई हँसी की बात सुनकर वह ऐसे खिलखिलाई कि झूले से

गिर पड़ीं और उनके पैर में मोच आ गई। इसलिए अब इस काम को करने के लिए उन्होंने अपनी दासियों में से मालविका को चुना और उससे कहा कि यदि उसके पैर के प्रहार से पांच दिन में उस अशोक में फूल खिल आयंगे तो वह उसे मुँह-मांगा इनाम देंगी।

इसलिए मालविका भी उस दिन अशोक का मनोरथ पूरा करने के लिए प्रमदवन में आई हुई थी। उसे वहाँ अकेला देखकर राजा चकित तो हुए, लेकिन प्रसन्न भी बहुत हुए और छिपकर उसकी, मन के भावों को प्रकट करनेवाली, बातों को सुनने लगे। देखने में अब वह पहले से बदल चुकी थी। उसका रंग सरकण्डे की तरह पीला पड़ गया था।

वह नहीं जानती थी कि लताओं की ओट में छिपे हुए महाराज और गौतम उसकी बेचैनी को देख रहे हैं। वह अपने-आपसे अपने मन की बात कहती रही। उसकी बातें सुनकर राजा को विश्वास हो गया कि वह भी उससे प्रेम करती है।

इतने में उसकी सखी वकुलावलिका चरणों को सजाने की सामग्री ले आई और बड़े प्यार से उसके पैरों में महावर रचाने लगी। यह देखकर महाराज को मालविका के वहां आने का सही कारण मालूम हो गया। लेकिन वह यह न जान सके कि इसी समय रानी इरावती

भी वहां आ गई हैं और सबकुछ देख-सुन रही हैं। रानी इरावती ने वकुलावलिका की बातें सुनीं तो उन्हें सन्देह होने लगा कि महाराज मालविका से प्रेम करते हैं। इतने में मालविका के दोनों चरण सजाकर वकुलावलिका ने उनमें नूपुर डाल दिए। वह भी पत्तों का गुच्छा कानों में पहनकर अशोक पर चरण प्रहार करने लगी। राजा मालविका के सामने आकर अपना प्रेम प्रकट करने का अवसर ढूंढ़ ही रहे थे कि गौतम ने तुरन्त एक चाल चली। एकदम आगे बढ़कर उसने मालविका से कहा, "देवी, महाराज के अशोक को बाएं पैर से ठुकरा कर क्या आपने अच्छा काम किया है ?"

उसने वकुलावलिका को भी डांटा। इसपर मालविका डर गई। वकुलावलिका ने कहा, "आर्य ! यह महारानी की आज्ञा का पालन हो रहा है। इसीलिए यह ऐसी ढिठाई करने में परवश थी। महाराज क्षमा करें।"

और वे दोनों राजा के चरणों पर गिर पड़ीं। राजा ने मालविका को हाथ पकड़कर उठाया और पूछने लगे कि कहीं पत्तों के समान कोमल उसका बायां पैर उस कठोर अशोक पर ठोकर मारने से दुखने तो नहीं लगा है ? मालविका यह बात सुनकर लजा गई और वहां से जाने लगी। तब यह कहकर राजा ने अपना प्रेम

व्यक्त करने में देर न की, "जाती हो, लेकिन अशोक की तरह मेरा मनोरथ भी पूरा करना।"

रानी इरावती सबकुछ देख-सुन रही थी। वह अब अधिक न सह सकी और शीघ्रता से बाहर आकर उनको डांटने लगी। उसे देखकर सब घबरा गए। मालविका तो सखी सहित क्षमा मांगकर तुरन्त वहां से खिसक गई। लेकिन महाराज की अच्छी गत बनी। उन्होंने बहुतेरा कहा, "तुम्हारे आने में देर हो रही थी, इसलिए थोड़ा-बहुत जी बहला रहे थे।" लेकिन रानी को विश्वास क्यों आने लगा था! उसने महाराज को बहुत डांटा और बार-बार मनाने पर भी उसका क्रोध शान्त नहीं हुआ। महाराज ने उसके पैर तक छुए, पर वह नहीं रुकी। वहां से चली ही गई।

: ४ :

रानी इरावती का क्रोध इतना तेज था कि उसने वह सब बातें बड़ी रानी धारिणी से कह दीं। इसपर महा-रानी धारिणी की आज्ञा से मालविका और वकुलावलिका के पावों में बेड़ियाँ डाल दी गईं और उन्हें एक अंधेरी काल-कोठरी में बन्द कर दिया गया। उनको छुड़ाने का कोई उपाय नहीं था, क्योंकि द्वार की रखवाली करने-वाली को महारानी की आज्ञा थी कि जबतक उनकी

नागमुद्रा न दिखाई जाय तबतक उन दोनों में से किसी-को भी न छोड़ा जाय।

ये सब बातें महाराज को तब मालूम हुई जब वह गौतम के साथ महारानी धारिणी का कुशल समाचार पूछने आ रहे थे। रास्ते में यह बुरा समाचार सुनकर उनको बड़ा दुःख हुआ। लेकिन वह चुप बैठनेवाले नहीं थे। उन्होंने गौतम से मालविका को छुड़ाने का कोई उपाय ढूंढ़ने को कहा। गौतम ने तुरन्त एक उपाय बताया। उसे जानकर महाराज बड़े प्रसन्न हुए और वह महारानी से मिलने चले गए। गौतम भी अपने काम में जुट गया।

उस समय महारानी अपने सोने के हवादार कमरे में सेज पर बैठी हुई थी। लाल चन्दन लगा हुआ उनका पाँव दासियों के हाथ में था और संन्यासिनी कौशिकी कहानी सुनाकर उनका मन बहला रही थी। महाराज को देखकर उन्होंने उठना चाहा, परन्तु महाराज ने उन्हें रोक दिया। वह वहीं बैठ गए और हालचाल पूछने लगे। वह उनके कष्ट के प्रति समवेदना प्रकट कर ही रहे थे कि गौतम जनेऊ से अपने पाँव का अँगूठा बांधे चीखता-चिल्लाता वहां आ पहुँचा। उसने रोते हुए बताया कि महारानी के दर्शन के लिए आते समय उनके लिए कुछ फल-फूल लेने वह प्रमदवन चला गया था। जैसे ही उसने

अशोक के फूल तोड़ने के लिए अपना दाहिना हाथ बढ़ाया वैसे ही नीचे से एक साँप ने उसे डस लिया। उसके अंगूठे पर सांप के काटने के चिह्न भी बने हुए थे। बार-बार वह यही कहता कि उसे कराल-काल ने डस लिया है, उसकी नस-नस खिच रही है और उसके प्राण निकला चाहते हैं। वह कभी महाराज से कहता कि उसने बचपन से महाराज का साथ दिया है, इसलिए उसके मरने के बाद उसकी निपूती माता की देखभाल की जाय। कभी वह भूल से किये हुए अपने अपराधों के लिए महारानी से क्षमा मांगता।

महारानी धारिणी और कौशिकी ब्राह्मण गौतम को मरता देख घबरा उठी। लेकिन महाराज ने उसे धीरज बंधाया और तुरन्त ध्रुवसिद्धि नामक वैद्य के पास ले जाने की आज्ञा दी। कुछ देर बाद ही प्रतिहारी ने लौटकर महाराज को बताया, "ध्रुवसिद्धि ने कहा है कि पानी के घड़े के सहारे किसी ऐसी वस्तु से विष उतारा जायगा, जिसमें नागमुद्रा जड़ी हो। इसलिए कोई ऐसी वस्तु ढूंढ़ कर ले आओ।"

यह सुनकर रानी धारिणी ने तुरन्त अपनी अंगुली से नागमुद्रा उतार कर उसे दे दी और कहा, "काम हो जाने पर इसे मुझे ही लौटा देना" महाराज ने भी कहा, "काम हो जाने पर शीघ्र ही समाचार देना।"

थोड़ी देर बाद समाचार मिला कि गौतम का विष उतर गया है और वह भला-चंगा हो गया है। रानी धारिणी यह सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई और महाराज अग्निमित्र भी मन्त्री का सन्देश पाकर किसी आवश्यक राज्य-कार्य में परामर्श देने वहाँ से चले गए। प्रतिहारी जयसेना उनके साथ थी। वहाँ से वे दोनों प्रमदवन गये। गौतम उन्हें मार्ग में ही मिल गया। उसने बताया कि काम पूरा हो चुका है। महाराज ने तब जयसेना को बिदा कर दिया और गौतम से पूछा, "क्योंजी, क्या माधविका ने विना कुछ पूछे-ताछे ही मालविका और वकुलावलिका को छोड़ दिया?"

गौतम ने बताया कि माधविका ने पूछताछ की थी, लेकिन वह भी कम चतुर न था। उसने माधविका से कहा, "महाराज के ग्रह विगड़ गए हैं, जिनकी शान्ति के लिए ज्योतिषियों ने सब बंदियों को मुक्त कर देने की राय दी है। यदि महारानी अपने किसी सेवक को भेजतीं तो रानी इरावती बुरा मान जाती। सो उनका मन रखने के लिए उन्होंने मुझे बुलाकर यह काम सौंप दिया है।"

माधविका ने इस बात को सच समझा और मालविका तथा वकुलावलिका को छोड़ दिया।

महाराज अपने मित्र की बुद्धि, और विशेपकर उसके स्नेह के कारण बड़ी सुगमता से अपना काम सिद्ध

होते देखकर फूले न समाए। उन्होंने उसकी बड़ी प्रशंसा की।

× × ×

उधर समुद्रगृह में मालविका अपनी सखी के साथ उनकी बाट जोह रही थी। वह चुपचाप वहाँ पहुँचकर एक झरोखे से उनको देखने लगे कि वे क्या कर रही हैं। वकुलावलिका मालविका को महाराज अग्निमित्र का एक चित्र दिखा रही थी। उन दोनों ने चित्रवाले महाराज को प्रणाम किया। मालविका उस दिन नाट्यशाला में लज्जा के कारण महाराज को पूरी तरह न देख पाई थी। इसलिए अब वह उन्हें चित्र में देखकर अघाती नहीं थी। किन्तु उस चित्र में महाराज सब ओर से दृष्टि हटा कर रानी इरावती की ओर देख रहे थे। यह देखकर मालविका को बड़ी जलन हुई और उसने क्रोध के मारे मुँह फेर लिया। राजा और गौतम तब तुरन्त उनके पास चले आये। उन्हें देखकर दोनों ने उनका स्वागत किया। कुछ क्षण बाद गौतम और वकुलावलिका बहाना बनाकर वहां से चले गए, लेकिन महाराज और मालविका वहीं रह गए। बाहर आकर गौतम ठंडी और चिकनी शिला पर लेट गया और कुछ देर बाद सो गया।

उसी समय छोटी रानी इरावती गौतम का हाल सुनकर प्रमदवन में उसे देखने आई। इसके साथ ही

वह चित्र में बने हुए महाराज को मनाना भी चाहती थी। उसे महाराज के रूठने का दुःख था। इसी समय उन्हें महारानी धारिणी की एक दासी से यह समाचार भी मिला कि उसका सम्मान बढ़ाने के लिए महारानी ने मालविका और उसकी सखी को बंदी-गृह में डाल दिया है।

समुद्रगृह के द्वार पर पहुँचकर उन्होंने विदूषक गौतम को आराम से सोते हुए पाया। वह नींद में मालविका से बातें कर रहा था। यह सुनकर इरावती की दासी ने कहा, "यह बड़ा कृतघ्न ब्राह्मण है। पेट तो आपके दिए लड्डुओं से भरता है और सपने में बातें करता है मालविका से। इसे अभी साँप जैसी टेढ़ी लकड़ी से डराती हूँ।"

यह कहकर उसने साँप की तरह टेढ़ी एक लकड़ी उस पर डाल दी। गौतम एकदम डरकर उठा और चिल्लाने लगा। उसकी चिल्लाहट सुनकर महाराज अग्निमित्र तुरन्त समुद्रगृह से बाहर निकल आए और गौतम की सहायता के लिए आगे बढ़े, पर पीछे आती हुई मालविका ने साँप के डर से उन्हें रोक दिया। इतनी देर में गौतम को पता लग गया कि वह साँप नहीं, लकड़ी है। वह हँसकर बोला, "केतकी के काँटे से अपना अंगूठा

छेदकर साँप पर जो मैंने झूठा कलंक लगाया था उसीका यह फल मिला है।"

खम्भे के पीछे छिपी हुई रानी इरावती यह सब देख रही थी। अब वह सामने आ गई और सबको लताड़ने लगी। उस समय मालविका की दशा बंधन से छूटे हुए उस पालतू कबूतर की तरह थी, जिसपर बिल्ली की दृष्टि पड़ गई हो। वकुलावलिका अपनेको निरापराध प्रमाणित करने का असफल प्रयत्न कर रही थी। उस बेचारी का दोष भी क्या था? क्या मेंढक की बोली सुनकर ही इन्द्र को पानी बरसने की याद आती है? विदूषक गौतम भी इरावती के कोप से बचने के लिए अपनी सब युक्तियाँ काम में ला रहा था। महाराज ने भी रानी को मनाते हुए कहा, "मुझे तो इसमें रूठने की कोई बात नहीं दिखाई देती। मैंने तो इन दोनों को इसलिए छोड़ दिया है कि उत्सव के दिन अपने सेवकों को अपराध करने पर भी बांधकर नहीं रखना चाहिए। वहाँ से छूटने पर ये दोनों मुझे प्रणाम करने यहाँ चली आई थीं।"

लेकिन इरावती का क्रोध शान्त नहीं हुआ। यही नहीं, वह बड़ी रानी पर भी क्रुद्ध हो उठी, लेकिन इसी समय उसकी दासी ने आकर कान में बताया कि यह सब काम गौतम का है। बस, वह गौतम पर बरस पड़ीं।

राजा बड़ी मुसीबत में थे कि इस संकट से कैसे पीछा छूटे कि उसी समय प्रतिहारी जयसेना ने आकर निवेदन किया, "कुमारी वसुलक्ष्मी गेंद के पीछे दौड़ रही थी कि एक पीला बन्दर वहाँ आ पहुँचा। उसे देखकर कुमारी बहुत डर गई हैं और देवी की गोद में पड़ी हुई थरथर काँप रही हैं। अभीतक उन्हें चेत नहीं हुआ।" उसे सुध में लाने के लिए राजा को एक अच्छा बहाना मिल गया, जिसका लाभ उठाकर वह तुरन्त वहाँ से चल दिए। रानी इरावती भी घबराकर उनके साथ चली गई।

उनके जाने के बाद भी मालविका का डर कम नहीं हुआ। कहने लगी, "अब न जाने क्या-क्या दंड भोगना पड़ेगा।" लेकिन ठीक इसी समय उन्हें सुनहरे अशोक के फूलने का समाचार मिला। वे दोनों बड़ी प्रसन्न हुईं और मालिन के पीछे-पीछे बड़ी रानी के पास चल दीं।

: ५ :

उसी समय राजभवन में चारों ओर से सुखद समाचार आने लगे। महारानी धारिणी के भाई वीरसेन ने विदर्भ देश से अपनी विजय का समाचार भेजा था। उन्होंने विदर्भराज को हराकर उनके भाई माधवसेन को छुड़ा लिया था और अनेक बहुमूल्य रत्न, हाथी,

घोड़े तथा अच्छे-अच्छे कलाकार-सेवक महाराज को भेंटस्वरूप भेजे थे ।

मालविका पर भी भाग्य ने दया की थी । सुनहरा अशोक उसके चरण-प्रहार से फूल उठा था । महारानी धारिणी बहुत प्रसन्न थीं और अशोक के फूलों की शोभा देखने के लिए उन्होंने महाराज अग्निमित्र को आमन्त्रित किया था ।

उस दिन संन्यासिनी कौशिकी को भी क्या सूझी ! उसने महारानी से कहा कि यदि उन्हें अपने-आपको शृंङ्गार-कला में निपुण समझने का गर्व है तो वह मालविका का विवाह के योग्य शृंङ्गार कर अपनी कला का परिचय दें । महारानी प्रसन्न तो थीं ही, उन्होंने नव-वधू के विशेष अलंकारों से मालविका को बड़े सुहावने ढंग से सजा दिया ।

महारानी का सन्देश पाकर महाराज अग्निमित्र विदूषक के साथ प्रमदवन में पधारे। वसन्त का यौवन जैसे लौट आया था । अशोक ने लाल फूलों की चादर ओढ़ रखी थी। जब महारानी ने महाराज का स्वागत किया तो मालविका रानी के पास ही खड़ी थी। उसे नववधू के वेष में देखकर राजा के हृदय में आशा की एक लहर उठी । मालविका अपने विवाह-वेष का

कारण जानती थी, परन्तु फिर भी उसकी बायीं आँख बार-बार फड़क रही थी और उसका मन कमल-पत्र पर पड़े जल की बूँदों की तरह काँप रहा था। वह बड़ी सुन्दर लग रही थी।

उसी समय विदर्भ देश से आए हुए उपहारों में से संगीत-कला-निपुण दो युवतियाँ महाराज और महारानी के सामने पेश की गईं। महारानी ने प्रसन्न होकर मालविका को उनमें से एक युवती को अपनी साथिन के रूप में चुन लेने के लिए कहा।

लेकिन जैसे ही दोनों युवतियों ने मालविका को देखा तो आश्चर्य से चकित रह गईं। उन्होंने अपनी राजकुमारी को पहचान लिया था। उन्होंने उसे झुककर प्रणाम किया और फिर गले मिलकर रोने लगीं। सब हैरान रह गए। पूछने पर पता चला कि यही वह मालविका है, जिसका विवाह महाराज अग्निमित्र से करने के लिए माधवसेन उसे विदिशा ला रहे थे। यही उस माधवसेन की छोटी बहन है, जिसे महाराज अग्निमित्र की विजयी-सेना नें यज्ञसेन के कारागार से मुक्त किया है।

राजकुमारी मालविका का वास्तविक परिचय पा कर महारानी बोल उठी, "मैंने चन्दन से खड़ाऊँ का काम लेकर बड़ा पाप किया है।"

युवतियों ने आगे बताया कि माधवसेन मालविका के साथ विदिशा आते समय जब अपने ही भाई द्वारा पकड़ लिये गए तो उनके मन्त्री सुमति मालविका को अपने साथ लेकर गुप्तरूप से कहीं चले गए।

उसके बाद क्या हुआ, यह वे कुमारियां नहीं जानती थीं, लेकिन उसी समय पंडिता कौशिकी बोल उठीं, "उसके बाद की कथा में बताती हूँ।"

उनकी आवाज सुनकर वे युवतियां उन्हें भी पहचान गईं। वह मन्त्री सुमति की बहन थीं। उन्होंने आगे की कथा बताते हुए कहा, "मेरे भाई सुमति माधवसेन के पकड़े जाने पर मालविका को आपके पास पहुंचाने स्वयं चल पड़े। रास्ते में विदिशा जाते हुए वैश्यों का एक दल मिला और वह उनके साथ हो लिये। थोड़ी दूर जाने के बाद उन्होंने एक जंगल में प्रवेश किया। तभी सहसा डाकुओं का एक दल उनपर टूट पड़ा। उन डाकुओं की छातियों पर तरकशों के पट्टे कसे थे, एड़ियों तक मोर-पंख लटक रहे थे और उन सबके हाथों में धनुष थे। वे ऐसे भयंकर थे कि उनसे लड़कर जीतना कठिन था। वणिक दल के सैनिकों ने कुछ समय तक तो उनका सामना किया, पर डाकुओं ने उन्हें शीघ्र ही मार भगाया।

"तब मेरे भाई ने उन डाकुओं से मालविका को बचाने

के लिए अपने प्राण दे दिये। उन्होंने स्वामी का ऋण चुका दिया। यह देखकर मैं मूर्छित हो गई और जब मुझे होश आया तो देखतो क्या हूं कि मालविका का कहीं पता नहीं है। तब अपने भाई का दाह-संस्कार करके मैं आपके देश चली आई और संन्यासिनी का वेष धारण कर लिया। फिर वीरसेन ने मालविका को डाकुओं से छुड़ाकर यहाँ महारानी के पास पहुंचा दिया। यहाँ पहुंचकर मैंने इसे देखा। यही मेरी कथा है।"

यह कथा सुनकर महाराज को बड़ा पछतावा हुआ। महारानी ने देवि कौशिकी से कहा, "भगवती, यह बात छिपाकर कि मालविका इतने ऊंचे घराने की है, आपने अच्छा नहीं किया।"

कौशिकी ने क्षमा-याचना करते हुए अपने मौन का कारण बताया, "मालविका के पिता के जीवन-काल में ही एक सिद्ध महापुरुष यात्रा करता हुआ उनके यहाँ आया था। उसने मेरे सामने ही भविष्यवाणी की थी कि मालविका एक वर्ष तक दासी बनकर रहेगी। उसके बाद योग्य पति से इसका विवाह होगा। जब मैंने देखा कि आपके चरणों में इसका कर्मभोग कट रहा है तो मैं चुप हो गई। मैं समझती हूं कि मैंने अच्छा ही किया।"

इसी समय कंचुकी ने आकर निवेदन किया, "मंत्रीजी ने कहलाया है कि विदर्भ के लिए जो प्रबन्ध करना था, वह सब कर दिया है, पर मैं महाराज की इच्छा भी जान लेना चाहता हूँ।"

महाराज ने कहा, "मैं चाहता हूँ कि यज्ञसेन और माधवसेन दोनों वरदा नदी के उत्तर और दक्षिण तटों पर अपने-अपने अलग-अलग राज्य स्थापित कर उसी तरह सुख से राज करें जिस तरह दिन और रात को बाँट कर सूर्य और चन्द्रमा अलग-अलग चमकते हैं।"

मंत्रिमंडल ने इस विचार का प्रसन्नता के साथ अनुमोदन किया। तब महाराज अग्निमित्र सेनापति वीरसेन को इस आशय का पत्र भेजे जाने की आज्ञा दे ही रहे थे कि उन्हें सेनापति पुष्यमित्र का पत्र भेंट किया गया।

अब तो महारानी उत्सुक हो उठीं। उनका पुत्र वसुमित्र सेनापति पुष्यमित्र के साथ ही था। पुष्यमित्र ने अपने पत्र द्वारा अपने पुत्र अग्निमित्र को सूचित किया था, "अश्वमेध की दीक्षा लेकर मैंने एक वर्ष की अवधि बांधकर जो घोड़ा छोड़ा था और सौ राजपुत्रों के साथ कुमार वसुमित्र को जिसकी रक्षा के लिए नियुक्त कर रखा था उसे सिन्धु नदी के दक्षिण तट पर यवनों की

घुड़सवार सेना ने पकड़ लिया। इसपर बड़ा युद्ध हुआ। उस युद्ध में धनुर्धारी वसुमित्र ने बड़ी वीरता से शत्रुओं को मार भगाया और अपना छिना हुआ घोड़ा लौटा लिया। मैं अब अश्वमेध-यज्ञ कर रहा हूँ। इसलिए आप तुरन्त बहुओं को लेकर चले आओ।"

महाराज और महारानी इस सुखद समाचार को सुनकर प्रसन्न हो उठे। महारानी धारिणी अब केवल वीर-पति की पत्नी ही नहीं थीं, बल्कि वीर-पुत्र की माता भी थीं। उन्हें हर्ष होना स्वाभाविक ही था। और सबको भी इस समाचार से बड़ा हर्ष हुआ। महाराज ने उस अवसर पर यज्ञसेन के साले और अन्य सब बंदियों को मुक्त कर दिया।

उस हर्ष और उल्लास में महारानी धारिणी मालविका को नहीं भूलीं। अपनी प्रतिज्ञानुसार उन्होंने उस शुभ अवसर पर उसे महाराज को सौंपने की इच्छा प्रकट की। रानी इरावती अब सबकुछ जान चुकी थी। इसलिए उसने भी महारानी के इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया।

अन्त में महारानी धारिणी ने वधु-वेषवाली मालविका को सचमुच दुलहिन बनाकर राजा को सौंप दिया, और पूछा, "आर्य-पुत्र, क्या मैं आपकी कुछ और मनचाही

बात कर सकती हूँ ?"

महाराज ने कहा, "देवि, मैं तो बस इतना ही चाहता हूँ कि तुम सदा मुझपर प्रसन्न रहो। फिर भी इतना और हो जाय कि जबतक अग्निमित्र राज्य करे तबतक उसकी प्रजा में किसी प्रकार के उपद्रव आदि न हों।"

'मंडल' द्वारा प्रकाशित प्राप्य साहित्य

आत्मकथा (गांधीजी) ५)
प्रार्थना-प्रवचन २ भाग ,, ५॥)
गीता-माता ,, ४)
पंद्रह अगस्त के बाद १॥), २)
धर्मनीति ,, १॥), २)
द० अफ्रीका का सत्याग्रह ३॥)
मेरे समकालीन ,, ५)
आत्म-संयम ,, ३)
गीता-बोध ,, ॥)
अनासक्तियोग ,, १॥)
ग्राम-सेवा ,, ।=)
मंगल-प्रभात ,, ।=)
सर्वोदय ,, ।=)
नीति-धर्म ,, ।=)
आश्रमवासियों से ,, ।=)
हमारी मांग ,, १)
सत्यवीर की कथा ,, ।)
संक्षिप्त आत्मकथा ,, १) १॥)
हिंद-स्वराज्य ,, ॥।)
अनीति की राह पर ,, १)
बापू की सीख ,, ॥)
गांधी-शिक्षा (तीन भाग),, १=)
आज का विचार (दो भाग) ॥।)
ब्रह्मचर्य (दो भाग) ,, १॥।)
गांधीजी ने कहा था ३ भाग ॥।)
शान्ति-यात्रा (विनोबा) १॥)
विनोबा के विचार : २ भाग ३)
गीता-प्रवचन ,, १),१॥)
जीवन और शिक्षण ,, २)
स्थितप्रज्ञ-दर्शन ,, १)
ईशावास्यवृत्ति ,, ॥।)
ईशावास्योपनिषद् ,, =)
सर्वोदय-विचार ,, १=)
स्वराज्य-शास्त्र ,, ॥)
गांधीजी को श्रद्धांजलि ,, ।=)

भूदान-यज्ञ (विनोबा) ।)
राजघाट की संनिधि में ,, ॥=)
विचार-पोथी ,, १)
सर्वोदय का घोषणा-पत्र ,, ।)
जमाने की मांग ,, =)
मेरी कहानी (नेहरू) ८)
,, संक्षिप्त ,, २॥)
हिन्दुस्तान की समस्याएं,, २)
लड़खड़ाती दुनिया ,, २)
राष्ट्रपिता ,, २)
राजनीति से दूर ,, २)
हमारी समस्याएँ ॥।)
विश्व-इतिहास की झलक २१)
सं० हिन्दुस्तान की कहानी ५)
नया भारत ,, ।)
आजादी के आठ साल ,, ।)
गांधीजी की देन (रा० प्र०) १॥)
गांधी-मार्ग ,, =)
महाभारत-कथा (राजाजी) ५)
कुब्जा-सुन्दरी ,, २)
शिशु-पालन ,, ॥)
मैं भूल नहीं सकता काटजू २॥)
कारावास-कहानी (सु. नै.) १०)
गांधी की कहानी (लु० फि०) ४)
भारत-विभाजन की कहानी ४)
बापू के चरणों में २॥)
इंग्लैंड में गांधीजी २)
बा, बापू और भाई ॥)
गांधी-विचार-दोहन १॥)
सर्वोदय-तत्व-दर्शन ७)
सत्याग्रह-मीमांसा ३॥)
बुद्ध-वाणी (वियोगी हरि) १)
सन्त-सुधासार ,, ११)
श्रद्धाकण ,, १)
अयोध्याकाण्ड ,, १)

भागवत-धर्म (ह० उ०) ५॥)
श्रेयार्थी जमनालालजी ,, ६॥)
स्वतन्त्रता की ओर ,, ४)
बापू के आश्रम में ,, १)
मानवता के झरने (माव०) १॥)
बापू (घ० बिड़ला) २)
रूप और स्वरूप ,, ॥=)
डायरी के पन्ने ,, १)
ध्रुवोपाख्यान ,, ।)
स्त्री और पुरुष (टाल्स्टाय) १)
मेरी मुक्ति की कहानी ,, १॥)
प्रेम में भगवान ,, २)
जीवन-साधना ,, १।)
कलवार की करतूत ,, ।)
हमारे जमाने की गुलामी ,, ॥।)
बुराई कैसे मिटे ? ,, १)
बालकों का विवेक ,, ॥)
हम करें क्या ? ,, ३॥)
धर्म और सदाचार ,, १।)
अँधेरे में उजाला ,, १॥)
ईसा की सिखावन ,, १)
कल्पवृक्ष (वा० अग्रवाल) २)
लोक-जीवन (कालेलकर) ३॥)
साहित्य और जीवन २)
कब्ज (म० प्र० पोद्दार) १)
हिमालय की गोद में ,, २)
कहावतों की कहानियाँ ,, २)
राजनीति-प्रवेशिका १)
जीवन-संदेश (ख० जिब्रान) १।)
अशोक के फूल ३)
जीवन-प्रभात २)
कां० का इतिहास २ भाग २०)
पंचदशी १॥)
सप्तदशी २)
रीढ़ की हड्डी १॥)
अमिट रेखाएं ३)

एक आदर्श महिला १)
राष्ट्रीय-गीत ।)
तामिल-वेद (तिरुवल्लुवर) १॥)
थेरी-गाथाएं १॥)
बुद्ध और बौद्ध साधक १॥)
जातक-कथा (आनंद कौ०) २॥)
हमारे गाँव की कहानी १॥)
खादी द्वारा ग्राम-विकास ॥।)
साग-भाजी की खेती ३)
ग्राम-सुधार १।)
पशुओं का इलाज ॥)
चारादाना ।)
रामतीर्थ-संदेश (३ भाग) १=)
रोटी का सवाल (क्रोपा०) ३)
नवयुवकों से दो बातें ,, ।=)
पुरुषार्थ (डा० भगवानदास) ६)
काश्मीर पर हमला २)
शिष्टाचार ॥)
तट के बंधन २)
भारतीय संस्कृति ३॥)
आधुनिक भारत ५)
फलों की खेती २॥)
मैं तन्दुरुस्त हूँ या बीमार ॥)
नवजागरण का इतिहास ३)
गांधीजी की छत्रछाया में १।।) २॥)
भागवत्-कथा ३॥)
जय अमरनाथ १॥)
हमारी लोककथाएँ १॥)
संस्कृत-साहित्य-सौरभ
(२३ पुस्तकें) प्रत्येक ।=)
समाज-विकास-माला
(४८ पुस्तकें) प्रत्येक ।=)
कृषि-ज्ञान-कोष ४)
प्रकाश की बातें १॥)
धरती और आकाश १।)
मेरी जीवन-यात्रा २)

'संस्कृत साहित्य-सौरभ' की पुस्तकें

१. कादम्बरी
२. उत्तररामचरित
३. वेणी-संहार
४. शकुन्तला
५. मृच्छकटिक
६. मुद्राराक्षस
७. नलोदय
८. रघुवंश
९. नागानन्द
१०. मालविकाग्निमित्र
११. स्वप्नवासवदत्ता
१२. हर्ष-चरित
१३. किरातार्जुनीय
१४. दशकुमार चरित : भाग १
१५. दशकुमार चरित : भाग २
१६. मेघदूत
१७. विक्रमोर्वशी
१८. मालतीमाधव
१९. शिशुपाल-वध
२०. बुद्ध-चरित
२१. कुमार संभव
२२. महावीर-चरित
२३. रत्नावली
२४. पंचरात्र

मूल्य प्रत्येक का छः आना

१०

सस्ता साहित्य
सस्ता साहित्य मण्डल

छः आना